RNI Reg. No.: UTTHIN/2021/83295

डाक पंजीकरण संख्याः यू.ए./नैनीताल–367/2023–2025

बात पहाड़ की

news.baatpahaadki.com

राष्ट्रीय हिन्दी साप्ताहिक

info@baatpahaadki.com

बात पहाड़ की
कृषि, संस्कृति, कला, योग, आयुर्वेद, शिक्षा, विज्ञान व समाचार

धारी (नैनीताल) | सोमवार 22 दिसम्बर 2025 से रविवार 28 दिसम्बर 2025 | वर्ष 05 | अंक 04 | पृष्ठ 4 | मूल्य 3.50 रुपये

केवल जागरूक और सतर्क उपभोक्ता ही सुरक्षित

डॉ. प्रितम भि. गेडाम

नागपुर, महाराष्ट्र। आज के डिजिटल युग में आर्थिक व्यवहार या खरीदारी तो आसान हो गयी, लेकिन उसी मात्रा में धोखाधड़ी, बनावटी उत्पाद, मिलावटखोरी और साइबर अपराध भी हद से ज्यादा बढ़ गए। दूसरों पर अंधा भरोसा, दिखावा, भ्रामक विज्ञापन, झूठे वादे पर विश्वास न करके अपने बुद्धि विवेक का इस्तेमाल करें, निति–नियम, कानून का पालन करें, तभी हम जागरूक उपभोक्ता बन पायेंगे। उपभोक्ता पैसे के बदले में किसी वस्तु या सेवा का लाभ प्राप्त करता है, तो उसे कीमत तुल्य सही उत्पाद मिलना चाहिए। उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 2019 के अंतर्गत उत्पाद के बारे में महत्वपूर्ण अधिकार मुख्य रूप से सुरक्षा का अधिकार, सूचना का अधिकार, चयन का अधिकार, सुनवाई का अधिकार, शिकायतों के निपटारे का अधिकार और ग्राहक जागरूकता का अधिकार यह छः अधिकार प्राप्त हैं। आईए इसको विस्तार से जानते है, इसमें जान और संपत्ति के लिए खतरनाक उत्पाद और सेवाओं की मार्केटिंग से सुरक्षा। गलत व्यापार के तरीकों से बचाने के लिए सामान, उत्पाद या सेवाओं की गुणवत्ता, मात्रा, क्षमता, शुद्धता, मानक, कीमत के बारे में सूचना पाने का अधिकार। प्रतियोगितात्मक कीमतों पर अलग–अलग तरह के सामान, उत्पाद और सेवाओं तक पहुंच का अधिकार। सही फोरम में उपभोक्ता के हितों पर योग्यतानुसार विचार किए जाने का अधिकार। गलत व्यापार के तरीकों या ग्राहकों के शोषण के खिलाफ शिकायत करने का अधिकार। एक जानकार उपभोक्ता बनने के लिए जरूरी ज्ञान और कौशल हासिल करने का अधिकार शामिल है।

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 2019 के साथ कई खास नियम और कानून भी हैं, जैसे उपभोक्ता संरक्षण (ई–कॉमर्स) नियम, 2020 और केंद्रीय व राज्य उपभोक्ता विवाद निवारण आयोगों को नियंत्रित करने वाले अधिनियम। ये अलग–अलग अधिनियम मिलकर उपभोक्ता को गलत तरीकों, उत्पाद और सेवा में खराबी से सुरक्षा का काम करते हैं। केंद्रीय उपभोक्ता संरक्षण प्राधिकरण एक कानूनी संस्था है, जिसे एक्ट के तहत उपभोक्ता अधिकारों को एक क्लास के तौर पर बढ़ावा देने, उनकी सुरक्षा करने और उन्हें लागू करने के लिए बनाया गया हैं। उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग विवाद सुलझाने के लिए तीन स्तरीय संरचना प्रदान करता है, जिला स्तरीय– 50 लाख रुपये तक, राज्य – 50 लाख से 2 करोड़ रुपये तक और राष्ट्रीय आयोग– 2 करोड़ रुपये से अधिक के विवाद की सुनवाई करता है।

उत्पाद दायित्व अधिनियम, उत्पाद की अवधारणा लाता है, जो निर्माता, सेवा प्रदाता और विक्रेता को उनके खराब उत्पाद या खराब सेवा से होने वाले नुकसान के लिए जिम्मेदार बनाता हैं। उपभोक्ता संरक्षण (प्रत्यक्ष विक्रय) अधिनियम, 2021 ये अधिनियम धोखाधड़ी योजनाओं को रोकने के लिए प्रत्यक्ष विक्रय उद्योग को नियंत्रित करते हैं। उपभोक्ता संरक्षण (मध्यस्थता) विनियम, 2020 उपभोक्ता मध्यस्थता सेल बनाता है और मध्यस्थता के लिए प्रक्रिया बताता हैं। उपभोक्ता संरक्षण (उपभोक्ता आयोग प्रक्रिया) विनियम, 2020 उपभोक्ता आयोग के लिए प्रक्रिया का विवरण देता हैं। उपभोक्ता संरक्षण (सामान्य) अधिनियम, 2020 उपभोक्ता संरक्षण के लिए सामान्य प्रावधान देता हैं। केंद्रीय उपभोक्ता संरक्षण प्राधिकरण (विशेषज्ञों और पेशेवरों की नियुक्ति के लिए प्रक्रिया) विनियम, 2021 केंद्रीय उपभोक्ता संरक्षण प्राधिकरण के लिए विशेषज्ञों को शामिल करने के लिए प्रक्रिया बताता हैं। खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम, 1954 खाद्य गुणवत्ता और सुरक्षा को नियंत्रित करता हैं। कृषि उपज (ग्रेडिंग और अंकन) अधिनियम, 1937 खेती के उत्पाद की श्रेणी को मानकीकृत करता हैं। भारतीय मानक ब्यूरो अधिनियम, 1986 सर्टिफिकेशन गुणों के जरिए उत्पाद की गुणवत्ता को पक्का करता हैं। भारतीय अनुबंध अधिनियम, 1872 अनुबंध को नियंत्रित करता है, जो एग्रीमेंट में उपभोक्ता के अधिकारों पर असर डाल सकते हैं। माल बिक्री अधिनियम, 1930 सामान की बिक्री को नियंत्रित करता हैं।

देश में उपभोक्ता धोखाधड़ी के आम प्रकार जैसे– किसी व्यक्ति की निजी जानकारी, बैंक अकाउंट या पैन विवरण का धोखाधड़ी के लिए इस्तेमाल करना। स्कैमर ईमेल, एसएमएस या फोन कॉल के जरिए बैंक या दूसरी भरोसेमंद संस्थाओं की नकल करके लोगों से ओटीपी, पासवर्ड या कार्ड विवरण जैसी सेंसिटिव जानकारी निकलवा लेते हैं। यूनिफाइड पेमेंट इंटरफेस और क्रेडिट कार्ड पर बिना इजाजत के लेन–देन बहुत आम हैं। निवेश घोटाला जो असली मुनाफे के बजाय नए निवेशक के पैसे का इस्तेमाल करके ज्यादा प्रतिफल का वादा करते है, इसमें ई–कॉमर्स मार्केटप्लेस और ऑनलाइन रिटेलर साइट्स पर होने वाले स्कैम शामिल हैं। स्कैमर किसी असली बिजनेस का दिखावा करके फोन पर आपके पैसे या निजी जानकारी ले लेते हैं।

भारत में साइबर हमलों की घटनाओं में लगातार बढ़ोतरी हो रही है, नेशनल साइबर क्राइम रिपोर्टिंग पोर्टल पर दर्ज की गई साइबर सिक्योरिटी घटनाओं की संख्या 2022 में 10.29 लाख से बढ़कर 2024 में 22.68 लाख हो गई है, जो 120 प्रतिशत से ज्यादा की बढ़ोतरी हैं। देश में "डिजिटल अरेस्ट" के मामलों में भी काफी उछाल आया है, जिसमें धोखेबाज डीपफेक और नकली पहचान जैसे एडवांस तरीकों का इस्तेमाल करके बड़ी रकम ऐंठ रहे हैं, खासकर बुजुर्गों से। इसके जवाब में, सुप्रीम कोर्ट ने सख्त रुख अपनाया है, और पूरे भारत में सीबीआई को इन मामलों की जाँच करने का अधिकार दिया है और ऑनलाइन बिचौलियों को जाँच में सहयोग करने का निर्देश दिया हैं। पिछले आठ महीने में महाराष्ट्र राज्य के 218 डिजिटल अरेस्ट केस में बेगुनाह लोग अपने 112 करोड़ रुपये गवां चुके हैं।

आर्थिक वर्ष 2022–23 में डुप्लिकेट उत्पाद की कीमत करीब 8 लाख करोड़ रूपये थी, जिसमें से आधे से ज्यादा हिस्सा वस्त्र एवं परिधान का था, जो 4,03,915 करोड़ रूपये था। भारत में नकल विरोधी पैकेजिंग बाजार 2024 में 5.5 बिलियन रूपये का था, जिसके 2025–2033 के बीच 14.3 बिलियन रूपये तक पहुंचने का अनुमान हैं। इस साल जनवरी से जून तक 6 महीने के समय में, ई–कॉमर्स सेक्टर में नकली, फेक और डुप्लीकेट उत्पाद की बिक्री से जुड़ी 7,221 शिकायतें राष्ट्रीय उपभोक्ता हेल्पलाइन पर दर्ज की गईं। 2024 के सरकारी डेटा और रिपोर्ट्स के आधार पर अनुमान बताते हैं कि नकली दवाओं से होने वाला आर्थिक नुकसान करीब 7.5 बिलियन रूपये हैं। अनुमान है कि भारत में सप्लाई होने वाली सभी दवाओं में से 12–25 प्रतिशत तक नकली हो सकती हैं।

उपभोक्ता धोखाधड़ी होने पर तुरंत सहायता प्राप्त करें या शिकायत दर्ज करें। ऑनलाइन धोखाधड़ी होने पर राष्ट्रीय साइबर अपराध रिपोर्टिंग पोर्टल (https://cybercrime-gov-in/) पर रिपोर्ट करें। सामान्य उपभोक्ता अपनी शिकायतों के लिए तुरंत ही राष्ट्रीय उपभोक्ता हेल्पलाइन वेबसाइट (https://consumerhelpline-gov-in/public/) का इस्तेमाल करें या टोल–फ्री नंबर 1800 11 4000 या 1915 पर कॉल करके संपर्क करें या 8800001915 नंबर पर एसएमएस करें। डिजिटल तरीके से शिकायत दर्ज करने के लिए उपभोक्ता ऐप या नेशनल पोर्टल ऑफ इंडिया का भी इस्तेमाल कर सकते हैं। बैंक धोखाधड़ी होने पर बैंकिंग लोकपाल से शिकायत करें। गंभीर आपराधिक घटना होने पर पास के पुलिस स्टेशन में एफआईआर दर्ज करें। उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम के तहत क्लेम की रकम के आधार पर जिला, राज्य या राष्ट्रीय उपभोक्ता फोरम में शिकायत दर्ज कर सकते हैं। ग्राहकों के हितों के लिए अनेक उपभोक्ता संगठन और स्वयंसेवी संस्थायें भी मार्गदर्शन करती है, कुछ मामलों में, सिविल न्यायालय भी मदद पाने का एक विकल्प हो सकता है। अक्सर, झगड़ों को सुलझाने के लिए मध्यस्थता जैसे तरीके भी मौजूद होते हैं। उपभोक्ताओं की जिम्मेदारियां और जागरूकता ही धोखाधड़ी से बचा सकते हैं। एक जागरूक उपभोक्ता बनें, निष्पक्ष रहें और गलत नीति का प्रयोग न करें। सामान और सेवा का चयन करते समय उनकी गुणवत्ता और सुरक्षा का ध्यान रखें, उत्पाद या सेवा के बारे में जानकारी इकट्ठा करें और मौजूदा तकनीक में होने वाले बदलावों या नवाचार के बारे में खुद को अपडेट रखें। उपभोक्ता स्वयं सोचें, अपनी आवश्यकताओ के अनुसार उत्पाद या सेवा का चुनाव करें। अपनी बात कहें, उत्पाद निर्माता और सरकार को अपनी जरूरतें और इच्छाएं दर्शायें। उत्पाद या सेवा से नाखुशी के बारे में शिकायत करें और दूसरों को भी बताएँ। जागरूक उपभोक्ता बने, सुरक्षित रहें।

हम सम्पूर्ण भवन निर्माण कार्य, मेंटिनेंश, विद्युत वायरिंग, पेंटिंग और सजावट का कार्य करते हैं।

Mobile No.: +91 9761034033
Email: aclnainital@gmail.com

ACL GOODS AND SERVICES
Registered Office:
Main Market Kasiyalekh, Block Dhari, District Nainital
Uttarakhand, PIN- 263137

बच्चों में बेवक्त खाने की आदत बनी आफत

बात पहाड़ की ब्यूरो

देहरादून। समय के साथ–साथ बच्चों में बेवक्त खाने की आदत उनके स्वास्थ्य के लिए घातक हो रही है। इसकी वजह से हो रहे मोटापे से हृदयघात का खतरा बढ़ रहा है। राजकीय दून मेडिकल कॉलेज चिकित्सालय के बाल रोग विभाग की ओपीडी में हर रोज चार मरीज ओबेसिटी से ग्रसित पहुंच रहे हैं। फूड डिलीवरी की आसान उपलब्धता और देर रात तक जागने की आदत बच्चों में बेवक्त खाने की प्रवृत्ति को जन्म दे रही है। बच्चों को रात और दिन में किसी भी समय खाना खाने की इच्छा हो रही है। लंबे समय तक यह आदत अपनाने वाले बच्चों में स्वास्थ्य चुनौतियां देखने को मिल रही हैं। इसके परिणाम अब सामने आने लगे हैं।

बड़ी संख्या में बच्चे अनिद्रा और उच्च रक्तचाप समेत कई शिकायतें लेकर पहुंच रहे हैं। इसकी वजह से उनमें मोटापा पनप रहा है। दून अस्पताल के वरिष्ठ बाल रोग विशेषज्ञ डॉ. अशोक कुमार के मुताबिक बच्चों में मोटापे के कई कारण हो सकते हैं। इसमें बच्चों की गतिहीन दिनचर्या, पैकेट का संरक्षित खाना, डायबिटीज और अस्थमा मुख्य है। बच्चे देर रात तक जागकर फोन और कंप्यूटर पर ऑनलाइन गेम खेलते हैं। एक महीने से अधिक दिनों तक यह क्रम दोहराने पर यह एक आदत का रूप ले लेती है। इससे बच्चों में बेवक्त खाने की इच्छा पैदा होने लगती है। ऐसे में वे रात को लंबे समय से संरक्षित किया हुआ खाना मंगवाते हैं, जो उनके वजन की तेज बढ़ोतरी का मुख्य कारण बनता है। मोटापे से ग्रसित बच्चों में हृदयघात का खतरा बढ़ जाता है। उनके शरीर का उच्च कोलेस्ट्रॉल हृदय की धमनियों में वसा को एकत्रित कर देता है। इसके अलावा इन बच्चों में लिवर सिरोसिस का खतरा भी बढ़ जाता है। यह लिवर फेलियर का भी कारण बन सकता है।

स्रोतः अमर उजाला

पहाड़ की बात को
जन-जन तक पहुँचाने वाले
अपने समाचार पत्र
"बात पहाड़ की"
को आर्थिक
सहयोग करें।
आप अपने सामर्थ के अनुसार किसी भी पेमैंट ऐप से उक्त QR कोड स्कैन कर हमें आर्थिक सहयोग कर सकते हैं।

संपादकीय बात पहाड़ की

'भ्रष्टाचार' के चंगुल में है हमारे देश की 'चाय-पानी'

गणेश सिंह बिष्ट

यदि अतीत में झॉका जाए तो चाय की लत हमारे देशवासियों को गुलाम–भारत के समय में अंग्रेजों ने लगाई थी। समय के पहिये के साथ–साथ चाय में पानी मिलाने की कला हम भारतीयों ने ही खोज डाली थी, तभी से 'चाय–पानी' की अटूट व्यवस्था हमारे देश के कोने–कोने में चली आ रही है। प्राचीनकाल से वर्तमान तक हम भारतीयों ने कई प्रथायें आरम्भ और समाप्त कर डाली हैं, किन्तु यह 'चाय–पानी' की परम्परा शायद ही कभी समाप्त हो पायेगी। क्योंकि हमारे देश के 'चाय–पानी' में बड़ी ताकत है, साहिब! इस 'चाय–पानी' की व्यवस्था में अगाध प्रेम और अपनत्व भरा होता है। हमारे घरों में आये मेहमानों के स्वागत में भी 'चाय–पानी' का बड़ा मान–पान है। मेहमान यदि 'चाय–पानी' न पिये तो मेजबान बुरा मान जाता है और यदि मेजबान 'चाय–पानी' को न पूछे तो मेहमान का मन खटक जाता है। मतलब यह हुआ कि 'चाय–पानी' आपसी रिश्तों की डोरी को भी बॉधे रखती है। वहीं दूसरी ओर यह रिश्वत के पर्यायवाची के रूप में बदनामी भी झेल रही होती है। खैर बात तो पते की है ही, गुणवान व्यक्ति को आलोचनाओं का घूँट पीना ही पड़ता है। जीवन में सुख कितने ही क्यों न हों, किन्तु दुःख–दर्द का भी अपना अलग ही मजा है। वैसे भी दुःख झेलने का अनुभव भी जीवन में अंदरूनी ताकत प्रदान करता है। शायद इसीलिये हमारे देश में 'चाय–पानी' इतनी बदनाम होने के बावजूद भी बड़ी बलवान है। कहीं भी जाओ 'चाय–पानी' का नाम लेते ही इसके आशिकों के मन में खुशी के लड्डू फूटने लगते हैं।

किसी सज्जन महापुरुष ने कभी हमारे देश में 'भ्रष्टाचार' नाम का बीज बोया होगा और उसे 'स्वार्थ' के जल से सींचा होगा। जब यह बीज जब बोया होगा इसके पोषण के लिए 'लालच' नाम का उर्वरक भी साथ में मिलाया होगा। इसीलिए हमारे देश में इसकी जड़ें इतनी गहरी हो चुकी हैं, और टहनियां तो देश के हर कोने–कोने तक पहूँच चुकी हैं। अब यह भ्रष्टाचार एक राक्षस का रूप ले चुका है, जिसका अंत करने के लिए शायद स्वयं ब्रह्मा जी को पृथ्वी में अवतरित होना पड़ेगा। यह भ्रष्टाचार रूपी राक्षस रिश्वत के नाम पर बेचारी 'चाय–पानी' की आबरू से दॉव खेलता रहता है। आज हर पंक्ति में यदि आपको आगे निकलना है तो यह 'चाय–पानी' का दॉव बड़ा काम कर देता है। किसी भी सरकारी व गैर–सरकारी योजना का लाभ लेना हो, कहीं आपका कोई काम अटक रहा हो, किसी अधिकारी के हाथ की कलम से आपका काम बनने वाला हो, आप सरकारी सेवा में तबादला चाहते हों, आप पदोन्नति चाहते हों, आप कार्यालय के कार्यभार से बचना चाहते हों, आप किसी दुर्घटना का शिकार हो चुके हो और कहीं से आपको आर्थिक सहायता प्राप्त होने वाली हो, बैंक से ऋण प्राप्त करना हो, ऐसे ही कोई भी काम यदि आसान करवाना हो तो 'चाय–पानी' की व्यवस्था से बड़ी जल्दी काम हो जाता है, बशर्ते यह बात स्वयं तक ही सीमित रखनी होती है। सरकारी तो छोड़ो इस व्यवस्था से गैर–सरकारी क्षेत्र भी अछूता नहीं है। वहॉ भी 'चाय–पानी' की व्यवस्था विकास की गति में उत्प्रेरक का काम कर देती है।

'चाय–पानी' की व्यवस्था के लिए भी प्रत्येक विभाग में कुछ खास लोग होते हैं, जो इस बात का पूरा ख्याल रखते हैं कि सांप भी मर जाए और लाठी भी न टूटे। कर्मचारी भी पूरे चौकन्ने होकर स्वयं को साफ–सुथरी छवि का साबित करने में लगे रहते हैं, वे स्वयं 'चाय–पानी' की बात किसी से नहीं कहते हैं, जबकि इसकी जिम्मेदारी वही खास लोग सम्भाल लेते हैं। आजकल के पढ़े–लिखे लोग व्यर्थ की झंझटों और कार्यप्रणाली में लगने वाले समय से बचने के लिए 'चाय–पानी' की व्यवस्था को अधिक पसंद करते हैं। इससे उनका काम तो आसान हो ही जाता है किन्तु साथ ही एक कुप्रथा का जन्म भी हो जाता है। इस कुप्रथा का शिकार सीधे–साधे व कमजोर आर्थिक वर्ग के ग्रामीणों को भी होना पड़ता है। हमारे देश में अधिकांश कुप्रथायें अमीर लोगों द्वारा ही चलाई गई हैं, जिन्हें झेलना आज गरीबों की मजबूरी हो गया है। हमारे देश का अमीर वर्ग न तो प्राचीनकाल में सुधरा हुआ था और न ही आज के युग में सुधरा हुआ है। अमीर वर्ग के लोग अपनी दौलत के दम पर अपने काम को आसान बनाना अधिक पंसद करते हैं, ये दौलत का लालच देकर बड़े से बड़े ईमानदार लोगों का जमीर भी खरीद लेते हैं और 'चाय–पानी' की व्यवस्था से उनकी आदतें खराब कर देते हैं। गरीब बेचारा करे भी तो क्या? वह इस व्यवस्था के खिलाफ आवाज तक नहीं उठा पाता है। वैसे भी गरीब के पास इतना समय ही कहॉ रहता है कि वह व्यर्थ की उलझनों में फॅसे। अन्ततः उसे भी यही लाइन दोहरानी पड़ती है, ''साहब मेरा काम थोड़ा जल्दी कर दीजिए और आप चिन्ता न करें, आपका 'चाय–पानी' हो जाएगा''। फिर गरीबों का काम भी आसान हो ही जाता है। अब रही बात अमीरों की वे इस व्यवस्था को खत्म करना ही नहीं चाहते, जबकि वे चाहें तो इस व्यवस्था के खिलाफ आगे आकर इसे खत्म करने के लिए हर प्रकार से सक्षम होते हैं। किन्तु फिर उनके स्वार्थ का क्या होगा? भ्रष्टाचार से तो वे अमीर बने थे, फिर वे अमीर कैसे रह पायेंगे?

हमारे देश की भूतपूर्व व वर्तमान सरकारों का चुनावी एजेण्डा 'भ्रष्टाचार मुक्त भारत' रहा है, किन्तु चुनाव के नतीजे अपने पक्ष में आने के उपरान्त भी सरकारों के मन में 'भ्रष्टाचार युक्त भारत' ही रहता है। अब ऐसे में हम अपने देश में राम–राज की कल्पना करें तो कैसे? क्या श्री राम के भजन गाने मात्र से हम भ्रष्टाचार को मिटा पायेंगे? क्या सरकारों के पास देश को भ्रष्टाचार मुक्त करने यानि 'चाय–पानी' की व्यवस्था में नकेल कसने की कोई ठोस रणनीति है? मुझे तो लगता है कि आज के युग में यदि कुछ लोग 'भ्रष्टाचार मुक्त भारत' की पहल करना भी चाहें तो उनकी इस पहल का दमन करने वाले लोगों की संख्या कई गुना अधिक होगी। खैर अच्छे दिन भी आयेंगे और कभी तो 'अति' की 'इति' भी निश्चित ही होगी। हमारी नई पीढ़ियों को इस बात का बेसब्री से इंतजार रहेगा।

सह सम्पादक

भारत में प्री–स्कूल शिक्षा की गुणवत्ता और कानून की खामियां

मासूम कमर

भारत की प्रगति पर बातचीत में, हम अक्सर कहानी के गलत सिरे से शुरुआत करते हैं। हम उच्च शिक्षा, रोज़गार, नवाचार और सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) के बारे में बड़े जोश से बात करते हैं। लेकिन, हमारे देश का भविष्य विश्वविद्यालयों या बोर्डरूम में शुरू नहीं होता। इसकी शुरुआत उन छोटे, रंगीन कमरों से होती है जहां छोटे बच्चे पढ़ना, लिखना, दुनिया पर भरोसा करना, दोस्ती निभाना, डर का इज़हार करना और खुशी की खोज करना सीखते हैं। असल मायनों में ये ही देश की असली संपत्ति हैं। प्री–स्कूल, जिन्हें भारत में प्ले स्कूल भी कहा जाता है, ज़्यादातर 3 से लेकर 6 साल की उम्र के बच्चों के लिए डे केयर, आफ्टर–स्कूल, प्लेग्रुप, नर्सरी और किंडरगार्डन जैसे कई तरह के कार्यक्रम प्रदान करते हैं।

पिछले कुछ सालों में इस उद्योग में बहुत ज़्यादा बढ़ोतरी देखी गई है, क्योंकि नई पीढ़ी के माता–पिता प्रारंभिक बचपन की शिक्षा के महत्व को समझ रहे हैं। भारत की प्री–स्कूल शिक्षा प्रणाली तेज़ी से विकसित हो रही है। ज़्यादा से ज़्यादा माता–पिता बच्चों के शुरुआती विकास में इसकी अहम भूमिका को समझ रहे हैं, इसलिए आजकल प्री–स्कूल, प्ले स्कूल और प्रारंभिक शिक्षा केंद्रों की मांग आसमान छू रही है। यही नहीं माता–पिता अपने बच्चों के भविष्य के लिए एक मज़बूत नींव प्रदान करने के लिए भरोसेमंद और गुणवत्तापूर्ण प्री–स्कूल की तलाश कर रहे हैं।

मज़बूत नीतियां, कमज़ोर सुरक्षा और आरटीई का उल्लंघन

प्री–स्कूलों की बढ़ती संख्या जहां कई तरह के अवसर प्रदान करती है। वहीं दूसरी ओर यह ऐसी चुनौतियां भी सामने लाती है, जो देश भर में समावेशी प्रारंभिक बाल्यावस्था शिक्षा की गुणवत्ता को प्रभावित कर सकती हैं। यहीं पर मानकीकरण की भूमिका आती है। यानी यह एक समान दिशानिर्देशों, ढांचों या मानदंडों का एक समूह स्थापित करने की प्रक्रिया है। जो प्रत्येक बच्चे के प्री–स्कूल अनुभव में एकरूपता, गुणवत्ता और समावेशिता सुनिश्चित करता है, क्योंकि हर एक बच्चा महत्वपूर्ण है। प्रारंभिक बाल्यावस्था शिक्षा कोई सहायक सेवा नहीं है। यह किसी भी देश का भावनात्मक, संज्ञानात्मक और सामाजिक आधार है और भारत में, यह आधार नीतिगत कमी के कारण नहीं, बल्कि प्री–स्कूल के अनियंत्रित व्यवसायीकरण के कारण खतरे में है। जबकि कागज़ों पर, भारत दुनिया के सबसे प्रगतिशील प्रारंभिक बाल्यावस्था ढांचों में से एक हैं।

राष्ट्रीय प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा (ईसीसीई) नीति साल 2013, राष्ट्रीय ईसीसीई पाठ्यक्रम ढांचा, आधारभूत चरण के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या ढांचा साल 2022, और आधारशिला पाठ्यक्रम साल 2024 मिलकर 3 से 6 साल की उम्र के बच्चों के लिए खासतौर पर बाल–केंद्रित रोडमैप की रूपरेखा प्रस्तुत करते हैं। एनईपी साल 2020 इस चरण को 5+3+3+4 संरचना के महत्वपूर्ण आधार के रूप में मान्यता देता है। ये सब साल 2002 में 86वें संशोधन के अनुच्छेद 45 में निहित संवैधानिक अधिदेश के तहत, केंद्र और राज्य स्तर पर सभी सरकारों को सभी बच्चों को 6 साल की उम्र पूरी होने तक प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा (ईसीसीई) प्रदान करना अनिवार्य है। हालांकि दस्तावेज़ मज़बूत हैं, लेकिन इनका ज़मीन स्तर पर लागू होना और उनकी निगरानी की व्यवस्था अभी भी बहुत कमजोर है। प्री–स्कूल एक प्रशासनिक ग्रे– क्षेत्र में हैं, जो महिला एवं बाल विकास विभाग और स्कूल शिक्षा विभाग के बीच लटका हुआ है।

गुणवत्ता की निरंतर निगरानी के लिए किसी एक नियामक संस्था को अधिकार नहीं दिया गया है। इस शून्य में, निजी प्रीस्कूल और फ्रैंचाइज़ी मॉडल तेज़ी से बढ़े हैं। ये स्कूल अक्सर विकासात्मक सिद्धांतों, सुरक्षा मानदंडों या शैक्षणिक नैतिकता के अनुरूप बन रहे हैं। शिक्षा का अधिकार (आरटीई) अधिनियम साल 2009, स्कूल–पूर्व शिक्षा के अधिकार (धारा 11) का केवल संक्षिप्त उल्लेख करता है, लेकिन इसके कार्यान्वयन के लिए कोई मानदंड या मानक स्थापित नहीं करता है, जबकि ईसीसीई नीति साल 2013 भी इसके कार्यान्वयन को कानूनी रूप से अनिवार्य नहीं बनाती है। ईसीसीई का मौजूदा कार्यान्वयन भी महिला एवं बाल विकास मंत्रालय (एमडब्ल्यूसीडी) और शिक्षा मंत्रालय (एमओई) के बीच बंटा हुआ है, जहां एमडब्ल्यूसीडी राष्ट्रीय ईसीसीई नीति के मार्गदर्शन में अपने आंगनबाड़ी केंद्रों के माध्यम से कार्यक्रम चलाता है, जबकि शिक्षा मंत्रालय मौजूदा सरकारी स्कूलों में ईसीसीई कक्षाएं चलाता है।

बढ़ते स्कूलों के बावजूद शिक्षा की गुणवत्ता में गिरावट

कई भारतीय शहरों में, हर गली–नुक्कड़ पर अंतर्राष्ट्रीय, वैश्विक और प्रीमियम जैसे शब्दों का इस्तेमाल कर नए–नए स्कूल खोले जाते हैं। स्कूलों के बाहर आकर्षक मार्केटिंग के लिए स्कूल को नए–नए रंगों से सजा रखा है। एडमिशन के समय स्कूल वाले अच्छा व्यवहार करते हैं। लेकिन इस चमकदार बाहरी आवरण और उदारता के पीछे एक परेशान करने वाली सच्चाई छिपी है। बढ़े स्कूल अपने स्कूलों की फ्रैंचाइज़ी लोगों को दे देते हैं, ताकि छोटे शहरों में भी उनके स्कूल खुल जाएं। फ्रैंचाइज़ी संचालित प्री–स्कूल श्रृंखलाएं कम निवेश, त्वरित शिक्षक प्रशिक्षण और पैकेज्ड पाठ्यक्रम प्रदान करती हैं। यह कहानी उद्यमिता की है, न कि प्रारंभिक बचपन के विकास की। पूंजी और जगह वाला कोई भी व्यक्ति प्री–स्कूल मालिक होने का दावा कर सकता है। कई केंद्रों में, शिक्षा को वर्कशीट, अंग्रेज़ी के पाठ और बनावटी मील के पत्थरों तक सीमित कर दिया जाता है। बचपन मानव विकास के उस नाजुक दौर के बजाय, जिसे विशेषज्ञता, संवेदनशीलता और गहन सम्मान की आवश्यकता होती है, एक विपणन, विक्रय और मापन का उत्पाद बन जाता है और प्रशिक्षण की कमी के कारण शिक्षक बाल–मनोविज्ञान को नहीं समझ पाते हैं।

महंगी फीस पर रिजल्ट अच्छा नहीं

इंडिया टुडे की साल 2025 की एक रिपोर्ट के मुताबिक, महानगरों में निजी प्री–स्कूलों की औसत सालाना फीस अब लगभग 1.2 से 2.5 लाख रुपये के बीच पहुंच गई है। उच्च श्रेणी के स्कूलों में यह खर्च और बढ़ जाता है, जिसमें एडमिशन फीस, यूनिफॉर्म, परिवहन और गतिविधि शुल्क शामिल होते हैं। कुल मिलाकर सालाना लागत आसानी से 4 से 5 लाख रुपये तक पहुंच जाती है। दिल्ली उच्च न्यायालय ने दिल्ली स्कूल शिक्षा अधिनियम के तहत कैपिटेशन फीस को पूरी तरह प्रतिबंधित कर दिया गया है। लेकिन फिर भी अक्सर माता–पिता पर भारी स्वैच्छिक दान या विकास शुल्क देने का दबाव भी बनाया जाता है।

स्क्रॉल में छपे अजीम प्रेमजी फाउंडेशन के किए गए एक सर्वेक्षण में पाया गया है कि अपने बच्चों को निजी स्कूलों में भेजने वाले भारतीय अभिभावकों को अक्सर वह लाभ नहीं मिलता है, जिसके लिए वे भुगतान करते हैं। भारतीय माता–पिता अपने बच्चों को मोटी फ़ीस वसूलने वाले प्राथमिक स्कूलों में यह सोचकर भेजते हैं कि उन्हें अंग्रेज़ी माध्यम की शिक्षा मिलेगी। लेकिन हक़ीक़त यह है कि इनमें से आधे से ज़्यादा बच्चों को भारतीय भाषाओं में पढ़ाया जाता है। भारतीय अभिभावक अक्सर बेहतर अंग्रेजी माध्यम शिक्षा, उच्च शैक्षणिक मानकों, बेहतर सुविधाओं और उच्च लागत के बावजूद बेहतर सामाजिक वातावरण की धारणाओं के कारण सरकारी की तुलना में निजी प्रीस्कूलों को चुनते हैं, जबकि सरकारी स्कूलों को शिक्षकों की अनुपस्थिति, खराब बुनियादी ढांचे और कम संरचित शिक्षण जैसी चुनौतियों का सामना करना पड़ता है।

कानूनी अस्पष्टताएं और ठोस कानूनों का अभाव

प्री–स्कूल रेगुलेशन के लिए भारत में कोई ठोस और अलग सा कानून नहीं है। इसी कारण स्कूल चलाने वाले अपनी मनमानी करते हैं। वे बच्चों को शिक्षण सब्जेक्ट न समझ कर पैसा प्रदान करने वाला ऑब्जेक्ट समझते हैं। यहां तक कि स्कूल पंजीकरण के लिए भी ठोस क़ानून की कमी के कारण राज्य मनमानी करते हैं। बार एंड बेंच की रिपोर्ट के मुताबिक, प्री–स्कूल पंजीकरण के नियम केवल आंध्र प्रदेश, झारखंड, तमिलनाडु और महाराष्ट्र में ही उपलब्ध हैं, लेकिन अन्य राज्यों में इन्हें पूरी तरह से विकसित या क्रियान्वित नहीं किया गया है।

राष्ट्रीय ईसीसीई परिषद की स्थापना साल 2014 में भारत सरकार के महिला एवं बाल विकास मंत्रालय के अंतर्गत एक राष्ट्रीय स्तर के संगठन के रूप में की गई थी। इसका उद्देश्य प्रशिक्षण प्रणालियां, पाठ्यक्रम, ढांचा मानक और संबंधित गतिविधियां प्रदान करना और प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा के क्षेत्र में सुधार के लिए क्रियात्मक अनुसंधान को बढ़ावा देना है। ईसीसीई नीति में, उपयुक्त प्राधिकारियों और राष्ट्रीय ईसीसीई परिषद के साथ–साथ राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग को ऐसी निगरानी और पर्यवेक्षण की ज़रूरी व्यवस्था करने की ज़िम्मेदारी सौंपी गई है। लेकिन इस सबके बावजूद स्कूल प्रशासन अपने हिसाब से स्कूल चलाते हैं।

कानून बनाने के प्रमुख कारण और आगे की राह

कानून बनाने का उदेश्य प्री–स्कूलों को व्यवसायों की जगह एक व्यवस्थित और शिक्षा पर ध्यान देने वाला क्षेत्र बनाना है। जिससे यह सुनिश्चित हो सके कि वे युवा शिक्षार्थियों की मौलिक आवश्यकताओं को पूरा करें और शिक्षा के संवैधानिक अधिकार को कायम रखें। भारतीय प्री–स्कूलों के लिए एक सख्त और ठोस कानून की आवश्यकता है ताकि शिक्षा की गुणवत्ता को मानकीकृत किया जा सके, बच्चों की सुरक्षा सुनिश्चित की जा सके, माता–पिता को शोषण से बचाया जा सके और समान पहुंच की गारंटी दी जा सके, क्योंकि वर्तमान नियम खंडित हैं, राष्ट्रीय शिक्षा नीति साल 2020 इन महत्वपूर्ण प्रारंभिक शिक्षा केंद्रों को विनियमित करने के लिए एक व्यापक ढांचे पर जोर दे रही है, जो वर्तमान में राज्य के दिशानिर्देशों, व्यावसायिक नियमों और पॉक्सो जैसे सामान्य बाल संरक्षण कानूनों के आधार पर चलाए जा रहे हैं।

प्री–स्कूल शिक्षा केवल बच्चों की प्रारंभिक शिक्षा नहीं, बल्कि उनके भावनात्मक, सामाजिक विकास की नींव है। आज भारत में प्री–स्कूलों की संख्या तेजी से बढ़ रही है और माता–पिता इसकी महत्वता को भी समझ रहे हैं। लेकिन, इसके साथ–साथ गुणवत्ता, सुरक्षा और कानूनी मानकों की कमी एक गंभीर चिंता का विषय बनी हुई है। क्योंकि फ्रैंचाइज़ी मॉडल, महंगी फीस, शिक्षक प्रशिक्षण की कमी और कानूनी अस्पष्टताएं बच्चों के सही विकास और माता–पिता के विश्वास को प्रभावित कर रही हैं। इसीलिए यह ज़रूरी है कि प्री–स्कूलों को व्यवसाय की बजाय शिक्षा–केंद्रित क्षेत्र बनाया जाए। ठोस कानून लागू किए जाएं, बच्चों की सुरक्षा सुनिश्चित की जाए, शिक्षकों को प्रशिक्षण और समर्थन मिले, और सभी बच्चों तक समान पहुंच सुनिश्चित हो। ताकि कोई भी बच्चा इससे बंचीत न रहे । जब हर एक बच्चे तक इसकी पहुंच होगी। तब ही भारत का युवा भविष्य मजबूत और समावेशी हो पाएगा।

साभार फेमिनिज़म इन इंडिया।

हिन्दी के पहले डी. लिट डॉ. पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल

चारु तिवारी

जब भी पौड़ी जाना होता है एक जगह हमेशा अपनी ओर आकर्षित करती रही है। बताती रही है अपनी थाती। कोटद्वार से ऊपर जाने के बाद एक पट्टी शुरू हो जाती है कोडिया। यहीं एक गांव है पाली। बहुत चर्चित। जाना पहचाना। यहां ग्राम सभा द्वारा निर्मित प्रवेश द्वार बताता है कि आप डॉ. पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल के गांव में हैं। पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल का मतलब हिन्दी के पहले डी. लिट। हिन्दी की शोध परंपरा का ऐसा नाम जिसने बहुत कम उम्र में गहन अध्ययन, प्रतिबद्धता, निष्ठा और सहजता के साथ हिन्दी की सेवा की। इस माह उनकी जयंती थी। हम सब हिन्दी साहित्य के इन महामनीषी को अपनी भावपूर्ण श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

डॉ. पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल का जन्म पौड़ी जनपद के लैंसडाउन से तीन किलोमीटर दूर कोडिया पट्टी के पाली गांव में 13 दिसम्बर, 1901 में हुआ था। उनके पिता का नाम पं. गौरीदत्त बड़थ्वाल था। वे अच्छे ज्योतिष और कर्मकांडी विद्वान थे। बहुत शुरुआती समय में उन्होंने घर में ही संस्कृत की पुस्तकों का अध्ययन शुरू कर दिया था। और 'अमरकोष' जैसे ग्रन्थ पढ़ डाले। जब वे मात्र दस साल के थे उनके पिता का निधन हो गया। उनके ताऊ पं. मणिराम बड़थ्वाल ने उनका पालन–पोषण किया। उनकी कोई संतान नहीं थी।

पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल जी की प्रारंभिक शिक्षा गांव में ही हुई। आगे की पढ़ाई के लिये वे श्रीनगर चले गये, लेकिन वहां से उन्हें बहुत जल्दी लखनऊ जाना पड़ा। यह उनके जीवन का नया मोड़ था। यहां 1920 में कालीचरण हाईस्कूल से उन्होंने सम्मान के साथ मैट्रिक और हाईस्कूल की परीक्षा पास की। उन दिनों इस विद्यालय में हिन्दी के सुप्रसिद्ध विद्वान, आलोचक श्यामसुन्दर दास प्रधानाध्यापक थे। उनके सान्निध्य में आने के बाद उनका हिन्दी भाषा और साहित्य की यात्रा का मार्ग प्रशस्त हुआ। इसके बाद वे कानपुर चले गये और यहां के डीएवी कालेज से 1922 में इंटर की परीक्षा उत्तीर्ण की। कानपुर प्रवास के दौरान उनका संपर्क अन्य गढ़वाली छात्रों के साथ हुआ। सबने निश्चय किया कि पर्वतीय छात्रों का एक संगठन बनाया जाय और 'हिलमैन' नाम से पत्र निकाला। वे जितनी अच्छी हिन्दी और संस्कृत लिखते थे, अब अंग्रेजी भी उतनी ही अच्छी और अबाध गति से लिखने लगे।

आगे की पढ़ाई के लिये बनारस हिन्दू विश्विद्यालय में प्रवेश लिया। यहां बीमार पड़ने के कारण गांव आना पड़ा। स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण दो साल तक गांव में ही रहना पड़ा। उनका 1922 से 1924 तक का समय बहुत बुरा रहा। पिता के निधन के बाद जिन ताऊ ने उन्हें अपनी छाया दी थी उनका भी निधन हो गया। इस बीच उन्होंने 'अम्बर' उपनाम से कवितायें लिखना शुरू कर दिया। उनकी कवितायें 'पुरुषार्थ' मासिक में छपने लगी। इस बीच गढ़वाल में पड़े अकाल में अपने साथियों के साथ मिलकर असहाय, भूखे और जरूरतमंदों की सेवा की। तब 'पुरुषार्थ' में उनकी एक कविता प्रकाशित हुई–

अन्यायियों का वज्र बनकर कर
विभंजक हे हृदय,
पर दीनजन दुःख ताप सम्मुख
मोम बन तू हे हृदय,
सम्राट तू बन, इंद्रियां हों तव
प्रजाजन हे हृदय,
सत्कार्य में संलग्न सतत भूल
तन–मन हे हृदय।

वे दुबारा बनारस गये और 1926 में बीए की परीक्षा उत्तीर्ण की। तब श्यामसुन्दर दास यहां हिन्दी के विभागाध्यक्ष थे। उसी साल विश्वविद्यालय में एमए हिन्दी की कक्षाएं शुरू हुई। वे हिन्दी के पहले बैच के विद्यार्थी के रूप में नामांकित हुये। उन्होंने 1928 में प्रथम श्रेणी में एमए की परीक्षा पास की। इस परीक्षा में उन्होंने 'छायावाद' पर विस्तृत और विद्वतापूर्ण निबंध लिखा। उससे श्यामसुन्दर दास बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने इस निबंध को विश्वविद्यालय की ओर से छपाना चाहा, लेकिन विश्वविद्यालय में ऐसा कोई प्रावधान न होने से यह संभव नहीं हो पाया।

श्याम सुन्दर दास ने उनके इस विषय को शोध के लिये चुन लिया। वे अपने शोध कार्य में लग गये। इसी बीच 1930 में उनकी नियुक्ति विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में प्राध्यापक के तौर पर हो गयी। उन्होंने 1929 में एलएलबी परीक्षा भी उत्तीर्ण कर ली। उनके शोध कार्य और अध्ययन को देखते हुये 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' ने अपने यहां उन्हें शोध विभाग का अवैतनिक संचालक नियुक्ति किया। इस काम को करते हुये उन्होंने बहुत वैज्ञानिक तरीके से कई महत्वपूर्ण ग्रन्थों की तालिकायें तैयार कीं।

इस दौरान वे अपने शोध की तैयारी में लगे रहे। दो–तीन वर्षों के अथक परिश्रम के बाद उन्होंने 1931 में अपना शोध प्रबंध विश्वविद्यालय में जमा किया। उनके शोध का विषय था– 'हिन्दी काव्य में निर्गुणवाद' (निर्गुण स्कूल इन हिन्दी पोयट्री)। शोध के परीक्षक थे– ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में उर्दू–हिन्दी के विभागाध्यक्ष डॉ. टी ग्राहम वैली, प्रयाग विश्वविद्यालय के दर्शन शास्त्र विभाग के प्रो. रामचंद्र दत्तात्रेय और श्याम सुन्दर दास। डॉ. वैली ने इसे पीएचडी के लिये ही उपयुक्त माना। उन्होंने दुबारा इसमें संशोधन कर प्रस्तुत किया। उन्हें 1933 में विश्वविद्यालय के दीक्षांत समारोह में डी–लिट की उपाधि दी गई। इसके साथ ही वे हिन्दी विषय में 'डाक्टरेट' करने वाले पहले शोधार्थी बन गये। इसके साथ ही उनकी ख्याति भी बढ़ने लगी। विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में उनके शोधपरक लेख प्रकाशित होने लगे। उनकी गिनती हिन्दी के बड़े विद्वानों में होने लगी और उन्हें कई सम्मेलनों में बुलाया जाने लगा।

पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल के पास शोध का व्यापक फलक था। हिन्दी, संस्कृत और अंग्रेजी के असाधारण विद्वान होने के कारण उनका शोध और अध्ययन बहुत गहरा था। एक तरह से उन्होंने आजादी से पहले अपने शोध से हिन्दी के लिए नये रास्ते और संभावनाएं तलाशी। उनका शोध प्रबंध 'निर्गुण स्कूल इन हिन्दी पोयट्री' शैक्षिक अनुसंधान के लिये मील का पत्थर थी। उन्होंने कबीर को पूर्ववर्ती सिद्ध संप्रदाय से जोड़कर इतिहास की अन्तवर्ती धारा को पाटने का काम किया। डॉ. बड़थ्वाल का काम इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि उन्होंने ऐसे समय पर यह शोध किया जब संतवाणियां प्रकाशित नहीं थी। उन्होंने सबसे पहले यह स्थापित किया कि नाथ, सिद्ध और संतकवि उपनिषदों के घाट पर बहते योग प्रवाह में डुबकी लगाकर खड़े हैं।

डॉ. बड़थ्वाल ने फुटकर शोधपरक लेखों के अतिरिक्त गोरखबानी, रामानंद की हिन्दी रचनाएं, सूरदास, हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, योग प्रवाह, मकरंद, संक्षिप्त रामचंद्रिका, तथा हस्तलिखित ग्रन्थों का चौदहवां, पन्द्रहवां तथा त्रैमासिक विवरण ग्रन्थों की रचना की। 'गोस्वामी तुलसीदास' तथा 'रूपक रहस्य' पुस्तकें बाबू श्यामसुन्दर दास के संयुक्त लेखन में तैयार की। इनके अलावा कबीर की साखी, सर्वागी, हरिदास की साखी, रैदास की साखी, हरिभक्ति प्रकाश, सेवादास, नेपाली साहित्य तथा जोगेसुरी बानी भाग–2 की रचना उन्होंने की थी लेकिन असमय निधन के कारण ये प्रकाशित नहीं हो पाई। 'गढ़वाल में गोरखा शासन', 'पवाडे' या 'गढ़वाल की वीरगाथायें' पुस्तकें आज उपलब्ध नहीं हैं। उनके अंग्रेजी में लिखे निबंधों का भी प्रकाशन नहीं हो पाया। उनके निधन के बाद डॉ. संपूर्णानंद तथा डॉ. भगीरथ मिश्र ने क्रमशः 'योग प्रवाह' और 'मकरंद' नाम से इन्हें प्रकाशित किया। 'गद्य सौरभ' नाम से एक पाठ्य पुस्तक उन्होंने आचार्य शुक्ल के साथ तैयार की थी। डॉ. गोविन्द चातक ने भी उनके निबंधों का एक संग्रह 'पीतांबरदत बड़थ्वाल के श्रेष्ठ निबंध' प्रकाशित किया। बाल पाठकों के लिये उन्होंने 'किंग आर्थर एण्ड नाइट्स ऑन द राउंड टेबल' का हिन्दी अनुवाद किया। अपने खराब स्वास्थ्य के चलते समय उन्होंने योग के कुछ व्यावहारिक प्रयोग किये। इससे संबंधित कुछ लेख तथा 'प्राणायाम', 'विज्ञान और कला' और ध्यान से आत्मचिकित्सा' जैसी पुस्तकें भी लिखीं। डॉ. बड़थ्वाल के निधन के बाद यह सारी सामग्री बिखर गई।

एक हिन्दी सेवी विद्वान के रूप में बड़थ्वाल जी की जो प्रतिष्ठा रही है, उतना ही उनका प्रेम पहाड़ के प्रति हमेशा रहा। जहां कानपुर में रहते उन्होंने 'हिलमैन' पत्र निकाला वहीं बहुत छोटी उम्र में श्रीनगर में हस्तलिखित 'मनोरंजनी' का संपादन किया। वर्ष 1921 में श्रीनगर में नवयुवक सम्मेलन की स्थापना करने का प्रयास किया। वे एक आलोचक से पहले कवि और पत्रकार भी रहे। जहां वे 'अंबर' उपनाम से कवितायें कर रहे थे वहीं 'व्योमचन्द्र' और 'विलोचन' उपनामों से गद्य लिख रहे थे। डॉ. पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल का जीवन बहुत संघर्ष का रहा। पारिवारिक परेशानियां और आर्थिक अभावों से वह बाहर नहीं निकल पाये। जिस हिन्दी की उन्होंने इतनी सेवा की उसी के लिये काम करते हुये बनारस हिन्दू विश्विद्यालय में असिस्टेंट प्रोफेसर होने के बावजूद उन्हें अन्य विषयों के प्राध्यापकों के समान वेतन नहीं दिया गया। इस पर उन्होंने उप–कुलपति को संबोधित अपने पत्र में लिखा– 'अन्य विषयों में डी–लिट के समकक्ष मुझे वेतन न दिये जाने का एक ही कारण दिखाई देता है और वह है मेरा हिन्दी का स्नातक होना।' डॉ. पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल जी का 43 वर्ष की बहुत कम उम्र में 24 जुलाई 1944 को निधन हो गया। हिन्दी सेवी इस विभूति को शत–शत नमन।

प्रकृति का अनुपम और अद्भुत चितेरा–प्रभात जोशी

कमल जोशी

उत्तराखण्ड की खूबसूरत पहाड़िसों में बसे अल्मोड़ा के निवासी प्रभात जोशी (68) करीब पांच दशकों से निरंतर चित्रकारी कर रहे हैं। वह 5 हजार से अधिक चित्र बना चुके हैं। उनकी बनायी अधिकांश पेंटिंग्स मिनिएचर (लघु चित्रों) के रूप में हैं। एक–डेढ़ इंच आकार के छोटे कैनवास पर मीलों लंबा और चौड़ा लैंडस्केप, वह भी गहराई व बारीकियों के साथ, गागर में सागर भरने जैसा है। इन्हें देख दर्शक हैरान हुए बिना नहीं रह सकते। उत्तराखण्ड में मिनिएचर पेंटिंग का इतिहास मुख्य रूप से गढ़वाल चित्रकला से जुड़ा हे जिसकी शुरुआत 17वीं शताब्दी में मुगल राजकुमार सुलेमान सिकोह के साथ आये चित्रकारों द्वारा हुई तथा जिसे मौलाराम जैसे कलाकारों ने विकसित किया।

प्रभात का पैतृक मकान जाखनदेवी मंदिर के नजदीक रानीखेत मोटर रोड के नीचे स्थित गल्ली मोहल्ले में है। उनके स्वर्गीय पिता राम चन्द्र जोशी एक वकील थे जो विधायक भी रहे। प्रभात नौवीं कक्षा में पढ़ते थे जब उनके सिर में गंभीर चोट आयी और 18–20 टांके लगाने पड़े। उन दिनों अल्मोड़ा (उत्तराखण्ड) कस्बे में सीटी स्कैन, एम.आर. आई. जैसी आधुनिक सुविधायें नहीं थीं। डाक्टर ने उन्हें 6 महीनों तक बिस्तर पर आराम की सलाह दी तो उन्होंने पूछा कि क्या मैं खाट पर बैठे–बैठे कुछ कर सकता हूं। चिकित्सक की अनुमति मिलने पर उन्होंने जीव विज्ञान के चित्र बनाने के काम आने वाले आर्ट पेपर मंगवाये और चित्र बनाना शुरू कर दिया। इस काम में आनन्द आने लगा और प्रयोग के तौर पर प्रभात कागज का आकार क्रमशः छोटा करते गये। इस तरह मिनिएचर पेंटिंग की। हांलांकि चित्रकारी का शौक बचपन से था लेकिन जीवन में अकस्मात् घटी एक दुर्घटना ने शौक को जुनून में बदल दिया। इसके बाद, प्रभात बताते हैं कि उन्होंने 1981 में अल्मोड़ा के

महाविद्यालय में विजुअल आर्ट की क्लास में प्रवेश लेकर बी.ए. पास किया। उनका मन मास्टर्स की डिग्री लेने का था लेकिन तब अल्मोड़ा में इसकी सुविधा नहीं थी और स्वास्थ्य सम्बन्धी कारणों से वह बाहर भी नहीं जा पाये। ऐसे में उन्होंने घर पर ही निरंतर अभ्यास जारी रखा।

प्रभात रोजाना ही चित्रकारी करते हैं लेकिन इसके लिये कोई समय निर्धारित नहीं है। ''जब मूड आया बैठ गये,'' वह हंसते हुए बताते हैं। आम तौर पर एक दिन में एक पेंटिंग बनाते हैं लेकिन कभी दो–तीन या चार भी बन जाती हैं। उनके सारे ही चित्र, जिनमें अधिकांश प्राकृतिक लैंडस्केप हैं, उनकी अपनी कल्पना पर आधारित हैं। वह देख कर चित्र नहीं बनाते। उनके चित्रों में हिमालय पर्वत शिखरों, बुग्यालों, वनों के साथ ही वसंत और पतझड़ आदि प्रकृति के विविध रूप भी दिखते हैं।

प्रभात के चित्रों की प्रदर्शनी ललित कला अकादमी द्वारा दिल्ली में आयोजित राष्ट्रीय कला मेले के अलावा नागपुर, लखनऊ, मुरादाबाद आदि जगहों पर भी लगी हैं। लेकिन वह स्वभाव से प्रकृति प्रेमी होने के साथ ही एकांत प्रिय भी हैं और प्रचार–प्रसार से दूर ही रहे हैं। प्रभात ने अपनी पेंटिंग नाना पाटेकर, जावेद अख्तर, डॉ. कर्ण सिंह, डॉ. मुरली मनोहर जोशी, पद्म–विभूषण बी डी पाण्डे, मृणाल पाण्डे सहित कई हस्तियों को भेंट की हैं। पहले वह अपने चित्रों की बिक्री भी करते थे। उनकी पेंटिंग भारत ही नहीं फ्रांस, कनाडा, आस्ट्रेलिया, जर्मनी, अमेरिका, दक्षिण कोरिया आदि देशों में कला प्रेमियों के घरों व संग्रह की शोभा बढ़ा रही हैं। इनमें से अनेक ने उनके चित्रों की सुन्दरता की भूरि–भूरि प्रशंसा करते हुए इनकी डिटेल्स को आश्चर्यजनक बताया हैं। विख्यात चित्रकार व पुरातत्वविद् डॉ. यशोधर मठपाल (पद्मश्री) ने इन मिनिएचर चित्रों को सूक्ष्मतम कलेवर में और बेमिसाल बताते हुए लिखा है कि प्रभात ने प्राचीन पहाड़ी लघुचित्र कला को समय के अनुरूप परिवर्तित और परिमार्जित कर सूक्ष्म रूप में अभिव्यक्ति दी है।

साभार नैनीताल समाचार।

कानूनी अस्वीकरणः इस समाचार पत्र में प्रकाशित समाचारों, लेखों, जानकारियों, आंकड़ों एवं विचारों आदि के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं। स्वामी, मुद्रक और प्रकाशक की इन सभी से सहमति आवश्यक नहीं है। सभी विज्ञापन संबंधित विज्ञापन दाताओं द्वारा प्रदत्त हैं, किसी भी विज्ञापन पर विस्वास करने से पूर्व उत्पाद एवं सेवा की गुणवत्ता स्वयं जांच लें। विज्ञापन से हुई किसी भी प्रकार की हानि के लिए स्वामी, मुद्रक और प्रकाशक जिम्मेदार नहीं हैं।

मनरेगा की जगह नया विधेयक, रोजगार के कानूनी अधिकार पर संकट

हिमांशु नितनावारे

महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा) की जगह प्रस्तावित नया कानून रोजगार की मांग का अधिकार को समाप्त कर देगा। साथ ही, इसका बजट भी सीमित हो जाएगा। यह चेतावनी विभिन्न शोधकर्ताओं व श्रम अधिकार कार्यकर्ताओं ने दी है। केंद्र सरकार ने मनरेगा की जगह विकसित भारत–ग्रामीण रोजगार और आजीविका गारंटी मिशन (ग्रामीण) विधेयक, 2025 संसद के चालू शीतकालीन सत्र में पेश किया है। यह कानून महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम, 2005 की जगह लेगा।

आलोचकों का कहना है कि नया ढांचा श्रमिकों के रोजगार के कानूनी अधिकार को कमजोर करता है और वित्त पोषण व क्रियान्वयन पर नियंत्रण को और अधिक केंद्रीकृत करता है। शोधकर्ताओं और श्रम अधिकार कार्यकर्ताओं का तर्क है कि यह प्रस्तावित कानून, जिसे वीबी–जी राम जी विधेयक भी कहा जा रहा है ग्रामीण मजदूरों की आजीविका को मजबूत करने के बजाय उन्हें नुकसान पहुंचा सकता है। ग्रामीण रोजगार से जुड़े मामलों के श्रमिक संगठन पश्चिम बंगा खेत मजदूर समिति की ओर से पैरवी कर चुके अधिवक्ता पूर्बायान चक्रबर्ती ने कहा कि प्रस्तावित कानून काम के अधिकार की प्रकृति को मूल रूप से बदल देगा।

उन्होंने कहा, "प्रस्तावित वीबी–जी राम जी विधेयक कानूनी अधिकार को समाप्त कर उसे केंद्र सरकार के नियंत्रण वाली, बजट–सीमित और विवेकाधीन योजना में बदल देता है। यह कोई सुधार नहीं है, बल्कि मजदूरों के दशकों के संघर्ष से हासिल संवैधानिक गारंटियों को पीछे ले जाने की कोशिश है।" मनरेगा के तहत ग्रामीण परिवारों को मांग करने पर साल में अधिकतम 100 दिन का रोजगार पाने का कानूनी अधिकार है। यदि आवेदन के 15 दिनों के भीतर काम उपलब्ध नहीं कराया जाता तो मजदूर बेरोजगारी भत्ते के हकदार होते हैं और मजदूरी से जुड़ा पूरा खर्च केंद्र सरकार वहन करती है।

कार्यकर्ताओं का कहना है कि नया विधेयक मांग–आधारित मॉडल की जगह आपूर्ति–आधारित व्यवस्था लागू करता है। मसौदा कानून में कहा गया है, "केंद्र सरकार प्रत्येक वित्तीय वर्ष के लिए निर्धारित किए जाने वाले वस्तुनिष्ठ मानकों के आधार पर राज्यवार मानक आवंटन तय करेगी।" इसमें यह भी जोड़ा गया है कि इस आवंटन से अधिक होने वाला कोई भी खर्च केंद्र द्वारा निर्धारित तरीके से राज्य सरकारों को वहन करना होगा। श्रम अधिकारों पर काम कर रहीं शोधकर्ता करीना सिंह ने कहा कि इन प्रावधानों के तहत केंद्र सरकार एकतरफा तरीके से फंडिंग का स्तर तय कर सकेगी, जिसका सीधा असर इस बात पर पड़ेगा कि राज्य कितने दिनों का रोजगार उपलब्ध करा पाएंगे। उन्होंने कहा, "यह मनरेगा की मूल अवधारणा को पूरी तरह उलट देता है, जहां फंडिंग मांग के अनुसार होती है। नए विधेयक के तहत मांग को पहले से तय बजट के भीतर समेटना होगा।" श्रम संगठनों का तर्क है कि यह बदलाव काम के वैधानिक अधिकार को कमजोर करता है। एक बयान में मजदूर संगठनों और कार्यकर्ताओं के गठबंधन नरेगा संघर्ष मोर्चा ने कहा कि यह विधेयक केंद्र सरकार को अत्यधिक विवेकाधीन अधिकार देता है।

बयान में कहा गया है, "जहां मनरेगा किसी भी ग्रामीण क्षेत्र में अकुशल शारीरिक श्रम करने को तैयार प्रत्येक वयस्क को काम की गारंटी देता है, वहीं प्रस्तावित कानून इस अधिकार को सीमित करता है। मसौदा विधेयक की धारा 5(1) में कहा गया है कि रोजगार केवल उन्हीं ग्रामीण क्षेत्रों में उपलब्ध कराया जाएगा, जिन्हें 'केंद्र सरकार द्वारा अधिसूचित' किया जाएगा, और प्रति परिवार कम से कम 125 दिन का काम दिया जाएगा।" कार्यकर्ताओं ने चेतावनी दी है कि यदि किसी ग्रामीण क्षेत्र को केंद्र सरकार अधिसूचित नहीं करती तो वहां के निवासियों के पास रोजगार का कोई कानूनी अधिकार नहीं रहेगा। इससे एक सार्वभौमिक गारंटी व्यवहार में सरकार की इच्छा पर निर्भर विवेकाधीन योजना में बदल जाएगी।

विधेयक में केंद्र और राज्यों के बीच लागत–वहन के फार्मूले में भी बदलाव किया गया है। पूर्वोत्तर राज्यों, हिमालयी राज्यों और कुछ केंद्र शासित प्रदेशों–जिनमें उत्तराखण्ड, हिमाचल प्रदेश और जम्मू–कश्मीर शामिल हैं, के लिए केंद्र सरकार कुल खर्च का 90 प्रतिशत वहन करेगी, जबकि राज्यों का योगदान 10 प्रतिशत होगा। अन्य सभी राज्यों और विधानमंडल वाले केंद्र शासित प्रदेशों के लिए यह अनुपात 60:40 निर्धारित किया गया है।

लिबटेक इंडिया से जुड़े शोधकर्ता चक्रधर बुद्धा ने कहा कि यह एक बड़ा नीतिगत बदलाव है। उन्होंने कहा, "पहले पूरे देश में 90 प्रतिशत खर्च केंद्र सरकार वहन करती थी। यह बदलाव खास तौर पर गरीब राज्यों पर अधिक वित्तीय बोझ डाल देगा।" लिबटेक इंडिया ग्रामीण सार्वजनिक सेवा वितरण में पारदर्शिता और जवाबदेही पर काम करता है। विधेयक में प्रति परिवार सालाना रोजगार की गारंटी को मनरेगा के 100 दिनों से बढ़ाकर 125 दिन करने का प्रस्ताव है। हालांकि कार्यकर्ता सिद्धांत रूप में इस बढ़ी हुई सीमा का स्वागत करते हैं, लेकिन उनका कहना है कि इससे वास्तविक गारंटी नहीं मिलती। बुद्धा ने कहा, "विधेयक साफ करता है कि कार्यक्रम कहां लागू होगा, इसका फैसला केंद्र सरकार करेगी। रोजगार राज्यों की अपनी हिस्सेदारी का खर्च उठाने की क्षमता पर भी निर्भर करेगा। इस तरह यह न तो सार्वभौमिक रह जाता है और न ही सही मायनों में गारंटीशुदा।"

उन्होंने यह भी जोड़ा कि आर्थिक सर्वेक्षण 2024 में काम की मांग और जमीनी स्तर पर उपलब्ध कराए गए रोजगार के बीच अंतर की बात कही गई है, लेकिन प्रस्तावित बदलाव इस समस्या का समाधान करने के बजाय मनरेगा के मांग–आधारित चरित्र को ही कमजोर कर देंगे। विधेयक के तहत एक और बड़ा बदलाव तकनीक के अनिवार्य उपयोग से जुड़ा है। पारदर्शिता और जवाबदेही सुनिश्चित करने के नाम पर कानून में मजदूरों और अधिकारियों दोनों के लिए बायोमेट्रिक प्रमाणीकरण, साथ ही जियोस्पेशियल टूल्स, सैटेलाइट इमेजरी, डिजिटल मैपिंग और मोबाइल ऐप के जरिये रियल–टाइम मॉनिटरिंग को अनिवार्य किया गया है।

चक्रधर बुद्धा ने कहा कि अब तक तकनीक का उपयोग सहायक साधन के रूप में किया जाता था, लेकिन नए विधेयक में इसे अनिवार्य बना दिया गया है। उन्होंने कहा, "ग्रामीण और दूरदराज इलाकों में तकनीक हमेशा भरोसेमंद तरीके से काम नहीं करती।" विधेयक में कृषि के चरम मौसम (पीक एग्रीकल्चरल सीजन) के दौरान रोजगार पर भी रोक लगाने का प्रावधान है। इसमें कहा गया है कि कृषि मजदूरों की पर्याप्त उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए अधिसूचित अवधि में इस योजना के तहत कोई काम नहीं कराया जाएगा। कार्यकर्ताओं का कहना है कि इसका सबसे अधिक नकारात्मक असर आदिवासी और हाशिए के समुदायों पर पड़ेगा, जहां मनरेगा के तहत मिलने वाला रोजगार अक्सर बागवानी, पौधारोपण और अन्य कृषि–आधारित गतिविधियों से जुड़ा होता है।

बुद्धा ने कहा, "अगर कृषि के महीनों में नई मजदूरी योजना के तहत कोई काम नहीं मिलेगा, तो आदिवासी समुदायों पर इसका सीधा असर पड़ेगा।" नरेगा संघर्ष मोर्चा ने कहा कि यह प्रावधान मजदूरों–खासकर महिलाओं को हर साल कम से कम दो महीनों तक कानूनी रूप से रोजगार से वंचित कर देगा। शोधकर्ताओं और कार्यकर्ताओं ने वीबी–जी राम जी विधेयक को सुधार के बजाय पीछे ले जाने वाला कदम बताया है। उनका कहना है कि यह अधिकार–आधारित कार्यक्रम की जगह केंद्र के नियंत्रण वाली, बजट–सीमित और निगरानी–प्रधान योजना लाता है। अधिवक्ता पूर्बायान चक्रवर्ती ने कहा, "सबसे अधिक चिंताजनक बात यह है कि यह विधेयक मजदूरों, ट्रेड यूनियनों या राज्य सरकारों से कोई सार्थक परामर्श किए बिना तैयार किया गया प्रतीत होता है। जब 26 करोड़ से अधिक पंजीकृत मजदूर और 12.6 करोड़ सक्रिय मजदूर इससे प्रभावित होंगे, तो इतने व्यापक बदलाव लोकतांत्रिक विमर्श के बिना नहीं थोपे जाने चाहिए।" आलोचकों का तर्क है कि यह विधेयक संविधान की भावना का उल्लंघन करता है, 73वें संविधान संशोधन को कमजोर करता है और मजदूरों, ग्राम सभाओं तथा राज्यों से अधिकार छीनकर उन्हें केंद्र सरकार के हाथों में सौंप देता है। प्रस्तावित कानून को खारिज करते हुए नरेगा संघर्ष मोर्चा ने इसके तत्काल वापस लिए जाने की मांग की है।

डाउन टू अर्थ से साभार।

क्या कीटनाशक–मुक्त कृषि से बदलेगा दुनिया का भविष्य? क्या है विशेषज्ञों की राय

ललित मौर्य

प्रतीकात्मक तस्वीरः आईस्टॉक

हर साल दुनिया में एक–तिहाई से ज्यादा कृषि पैदावार पर खरपतवार, कीटों और बीमारियों का खतरा मंडराता रहता है। ऐसे में फसलों को बचाने के लिए बड़े पैमाने पर धड़ल्ले से रासायनिक कीटनाशकों का इस्तेमाल किया जा रहा है, लेकिन यह जहर अब इंसानी सेहत और पर्यावरण दोनों के लिए गंभीर खतरा बन चुका है। ऐसे में सवाल उठता है कि अगर दुनिया भर के किसान रासायनिक कीटनाशकों की जगह पर्यावरण–अनुकूल और कीट प्रबंधन के प्राकृतिक तरीकों को अपनाएं, तो कृषि की तस्वीर कैसी होगी? इसी सवाल का जवाब खोजने के लिए जर्मनी की बॉन यूनिवर्सिटी और स्विट्जरलैंड की ईटीएच ज्यूरिख से जुड़े शोधकर्ताओं के नेतृत्व में एक अंतर्राष्ट्रीय अध्ययन किया गया है।

इस अध्ययन में पर्यावरण, कृषि, अर्थशास्त्र और स्वास्थ्य जैसे अलग–अलग क्षेत्रों के 517 विशेषज्ञों की राय ली गई, जिसके नतीजे प्रतिष्ठित जर्नल नेचर कम्युनिकेशंस में प्रकाशित हुए हैं। इनमें से अधिकांश विशेषज्ञों का मानना है कि इस बदलाव के लंबे समय में सकारात्मक नतीजे होंगे, यहां तक कि यह पर्यावरण और सेहत के लिए ही नहीं बल्कि आर्थिक रूप से भी फायदेमंद होगा। हालांकि, इसके प्रभाव हर क्षेत्र में अलग–अलग हो सकते हैं। अनुमानों के मुताबिक, अगर फसलों की सुरक्षा न की जाए तो हर साल दुनिया भर में एक–तिहाई से ज्यादा पैदावार खरपतवार, कीट और बीमारियों की भेंट चढ़ सकती है। लेकिन अध्ययन के प्रमुख शोधकर्ता प्रोफेसर निक्लास मोहरिंग का प्रेस विज्ञप्ति में कहना है, "रासायनिक कीटनाशकों का जरूरत से ज्यादा इस्तेमाल इंसानी सेहत और पर्यावरण दोनों के लिए खतरनाक है।" यही वजह है कि वैज्ञानिक अब खेती के पर्यावरण अनुकूल विकल्पों पर जोर दे रहे हैं।

अध्ययन के मुताबिक पर्यावरण–अनुकूल कीट प्रबंधन में ऐसे तरीके शामिल हैं, जिनसे रसायनों पर निर्भरता कम से कम की जा सके। इनमें कीट–रोधी फसलों को अपनाना, फसल चक्र में विविधता और खेतों के किनारों पर झाड़ियां या पेड़ लगाना शामिल है, ताकि कीटों के प्राकृतिक दुश्मन पनप सकें। हालांकि, प्रोफेसर मोहरिंग मानते हैं कि हर इलाके के लिए ऐसे विकल्प अभी आसानी से उपलब्ध नहीं हैं और इसके लिए और शोध की जरूरत है। उनके मुताबिक खेती की परिस्थितियां हर जगह अलग होती हैं, इसलिए एक देश का समाधान दूसरे देश में भी काम करे, यह जरूरी नहीं। यही वजह है कि जर्मनी जैसे किसी एक देश में हुए अध्ययन के नतीजे सीधे दुनिया के दूसरे हिस्सों में लागू करना अक्सर संभव नहीं होता।

इसी वजह से यह स्पष्ट नहीं होता कि किसी खास इलाके में सतत कीट प्रबंधन को सफलतापूर्वक अपनाया जा पाएगा या नहीं। यह भी अनिश्चित रहता है कि इससे पर्यावरण संरक्षण, फसल उत्पादन और किसानों की आमदनी के बीच किस तरह के समझौते करने पड़ सकते हैं। शोधकर्ताओं के मुताबिक इस असमंजस को समझने के लिए उन्होंने स्थानीय विशेषज्ञों से बात की, ताकि यह जाना जा सके कि इस बदलाव में क्या अवसर हैं और क्या जोखिम। इसके लिए शोधकर्ताओं ने एक विस्तृत सर्वे तैयार किया। इसमें प्रभाव को पांच हिस्सों में बांटा गया, जिनमें पर्यावरण, इंसानी सेहत, खाद्य सुरक्षा, किसानों की आर्थिक स्थिति और सामाजिक समानता व सुरक्षा शामिल थे। इसमें किसानों और कृषि मजदूरों की कामकाजी परिस्थितियों को भी शामिल किया गया। इस सर्वे में कुल 517 विशेषज्ञों ने भाग लिया, जिन्हें अपने–अपने क्षेत्रों में कृषि की गहरी समझ थी। इनमें पर्यावरण, अर्थशास्त्र और जैसे अलग–अलग विषयों के जानकार शामिल थे, ताकि इस मुद्दे पर विविध और संतुलित राय मिल सके।

हालांकि विशेषज्ञों की उम्मीदें उनके क्षेत्र और विशेषज्ञता के अनुसार अलग–अलग रहीं हो, लेकिन एक बात पर लगभग सभी सहमत थे कि पर्यावरण अनुकूल कीट प्रबंधन की ओर बदलाव का असर लम्बे समय में सकारात्मक होगा। खासकर पर्यावरण और सेहत को इससे बड़ा फायदा होगा। उदाहरण के लिए इस बदलाव से जल प्रदूषण घटेगा, जैव विविधता बढ़ेगी और कीटनाशकों से होने वाले स्वास्थ्य जोखिम कम होंगे। यह राय लगभग हर महाद्वीप और हर क्षेत्र के विशेषज्ञों में समान रही।

वहीं दूसरी ओर आर्थिक असर को लेकर विशेषज्ञों की राय में बड़ा अंतर देखा गया। उत्तरी अमेरिका, यूरोप और ऑस्ट्रेलिया में विशेषज्ञों की राय मिली जुली रही, उनका मानना है कि शुरुआत में यह बदलाव किसानों की आमदनी पर अच्छा या बुरा, दोनों तरह से असर डाल सकते हैं। इसके उलट एशिया, अफ्रीका और दक्षिण अमेरिका के विशेषज्ञों का मानना है कि यह बदलाव किसानों के लिए आर्थिक अवसर भी पैदा कर सकता है। इन महाद्वीपों के विशेषज्ञों को यह भी लगता है कि इससे स्थानीय लोगों को सुरक्षित भोजन तक बेहतर पहुंच मिलेगी, जो यूरोप और उत्तरी अमेरिका के विशेषज्ञों की तुलना में अधिक सकारात्मक आकलन है। प्रोफेसर मोहरिंग कहते हैं, "इन तमाम मतभेदों के बावजूद विशेषज्ञ कुल मिलाकर उम्मीद से ज्यादा आशावादी हैं।" हालांकि उनका यह भी कहना है, "यह बदलाव बिना लागत के नहीं होगा। इसकी वजह से शुरुआत में लागत बढ़ सकती है, लेकिन लंबे समय में ज्यादा फायदा होगा।"

उनका मानना है कि इस बदलाव में किसानों को अकेला नहीं छोड़ा जा सकता। उन्हें स्थानीय परिस्थितियों के मुताबिक असरदार विकल्प, वैज्ञानिक सहायता और जरूरी सरकारी समर्थन देना बेहद अहम होगा। यह अध्ययन विशेषज्ञों की राय पर आधारित है। इसलिए अब जरूरी है कि अलग–अलग क्षेत्रों में जमीनी स्तर पर प्रयोग किए जाएं, ताकि यह समझा जा सके कि पर्यावरण अनुकूल कीट प्रबंधन वास्तव में कितना कारगर है। हालांकि अध्ययन से एक बात तो साफ है कि अगर खेती को जहर से मुक्त किया गया, तो उसका फायदा सिर्फ खेतों को ही नहीं बल्कि पूरी दुनिया को होगा।

डाउन टू अर्थ से साभार।

'बात पहाड़ की' ई-पेपर पढ़ने के लिए इस QR कोड को स्कैन करें।

बात पहाड़ की
सम्पादकः पंकज सिंह बिष्ट
स्वामी, मुद्रक एवं प्रकाशक पंकज सिंह बिष्ट द्वारा भीड़ापानी ओखलकांडा प्रिंटिंग प्रेस, निकट कालाढूंगी चौराहा, भोलानाथ गार्डन, हल्द्वानी, जिला नैनीताल (उत्तराखण्ड) से मुद्रित एवं म.नं. 14 ग्राम गजार, पोस्ट ऑफिस कसियालेख, ब्लॉक व तहसील धारी, जिला नैनीताल, उत्तराखण्ड, पिन 263137 से प्रकाशित।
Mobile: +91 9410126343
Email: info@baatpahaadki.com
Website: news.baatpahaadki.com
RNI No.: UTTHIN/2021/83295
इस अंक में समाचारों के चयन एवं सम्पादन हेतु पी.आर.बी. एक्ट के अंतर्गत उत्तरदायी।
समस्त वादों का निस्तारण धारी न्यायालय के अधीन होगा।